"उन धार्मिक मान्यताओं को तोड़े बिना, जिनपर कि जातिप्रथा टिकी हुई है, जातियों को तोड़ा नहीं जा सकता है।"

"अंतरजातीय विवाह का प्रचार व आंदोलन हिंदुओं के गले में जबरदस्ती कड़वी दवा उढ़ेलने जैसा है। परंतु यदि आप स्त्रियों व पुरुषों को शास्त्रों की गुलामी से मुक्ति दिला सके, उनके दिमाग से शास्त्रों का दूषित प्रभाव मिटा सके, तो आप देखेंगे कि लोग बिना आपके कहे ही अंतर्जातीय भोज व अंतरजातीय विवाह सहर्ष स्वीकार करेंगे।"

इंसाफ
सामाजिक न्याय समिति

INSAF
SOCIAL JUSTICE COMMITTEE

Illustrious Nationalist Social Activism Forum (INSAF)
पंजीकृत कार्यालय: आई-190, अशोक विहार फेस-1, दिल्ली-110052
पत्राचार कार्यालय: एफ-11, दिपाली अपार्टमेंट, रामप्रस्थ, गाज़ियाबाद, उ.प्र. -201011;

संगोष्ठी अभियान
विषय:

वर्णव्यवस्था अपराध है,
इसे दण्ड विधान से ख़त्म करना चाहिए।

प्रथम प्रकाशन:
पूज्य राजमाता जीजाबाई जी के स्मृति दिवस 17 जून, 2021 को
इंसाफ द्वारा जनहित में प्रचारित

लेखन, संकलन व संपादन
अमृतलाल सरजीत सिंह; 7226820310
amritlal.singh64@gmail.com; insaf.nationalwp@gmail.com;

वर्णव्यवस्था अपराध है,
इसे दण्ड विधान से ख़त्म करना चाहिए।

विषय की प्रस्तावना

भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था के संक्रमण से पीड़ित जातियों, छुआछूत, शोषण, उत्पीड़न आदि समस्याओं में आकंठ डूबा हुआ है। देश के ज्यादातर लोग इसके दंश को महसूस करते हैं लेकिन वे इससे निजात पाने के लिए कोई सार्थक पहल नहीं करते है। इसके कई कारण हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है कि देश के बुद्धिजीवी वर्ग का एक बड़ा हिस्सा, समाज जिनका अनुकरण करता है, वह इसके प्रति उदासीन है और दूसरा बुद्धिजीवी अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु इसे चलाए रखना चाहता है तथा वर्णव्यवस्था कि पैरवी करता है। यह दोनों ही मिलजुलकर वर्णव्यवस्था के प्रशंसक व हितैषी गाँधी को महात्मा और राष्ट्रपिता बनाए हुए हैं। अमानवीय वर्णव्यवस्था का परम हितैषी देश का आदर्श, देश का राष्ट्रपिता क्यों होना चाहिए? यह वह वर्ग है जिसने समाज को बड़ी चतुराई से समस्या के मूल से भटकाया है और मूल समस्या को विमर्श का विषय नहीं बनने दिया है। समाज में वर्णव्यवस्था की बजाय जातिप्रथा व जातियों को मिटाने पर ही चर्चा की जाती है। जबकि जातिप्रथा वर्णव्यवस्था के कारण अस्तित्व में आई हैं और वर्णव्यवस्था विदेशी ब्राह्मणों के निजी स्वार्थ की पूर्ति के उद्देश्य से लिखे गए वेदशास्त्रों, धर्मशास्त्रों के कारण। बाबासाहब ने कहा था :

"उन धार्मिक मान्यताओं को तोड़े बिना, जिनपर कि जातिप्रथा टिकी हुई है, जातियों को तोड़ा नहीं जा सकता है।"

लेकिन समाज में ऊँच-नीच के धार्मिक सिद्धांत को बनाए रखकर जातियां मिटाने व अत्याचार रोकने की बात ही की जाती है। जैसे, उपनाम हटा दिया जाना या संवैधानिक आरक्षण हटा दिया जाना या अंतरजातीय विवाह करना आदि। परन्तु, जातिप्रथा, ऊंचनीच, भेदभाव, आदर, निरादर आदि विभेदन की मानसिकता वर्णव्यवस्था की अपराधिक नीचता की उपज है। जब तक वर्णव्यवस्था को खत्म नहीं किया जाता है तब तक इसका परिणाम, जो विभिन्न छोटी-बड़ी 6-7 हजार गिन ली गई जातियों और हजारों नहीं गिनी गई जातियों और इनमें व्याप्त ऊंच-नीच, भेदभाव, बैरभाव, ईर्ष्या, द्वेष, लाभ हानि आदि के व्यवहार के रूप में परिलक्षित होता है, इन्हें भी खत्म नहीं किया जा सकता है। जैसे गंदे कचरे को रखकर आप इसकी सड़ांध से मुक्त नहीं हो सकते हैं वैसे ही वर्णव्यवस्था को पवित्र आश्रय देने वाले ग्रंथों व वर्णव्यवस्था को कायम रखकर

आप जातियों से मुक्त नहीं हो सकते हैं। शूद्रों और अछूतों की समस्या को लेकर गांधी वादियों और अंबेडकर के बीच यह ही मौलिक अंतर था कि बाबासाहब जातिप्रथा व जातियां मिटाने के लिए वर्णव्यवस्था को मिटाने व वेदशास्त्रों में डायनामाईट लगाए जाने की बात करते थे किन्तु गाँधीवादी वर्णव्यवस्था व वेदशास्त्रों को पवित्र मानते हुए जातिप्रथा मिटाने के लिए रोटी-बेटी के व्यवहार या अंतरजातीय विवाहों की पैरवी करते थे। इसे पहचानने में समाज ने भयंकर भूल की है। यह भूल मुख्यतः अंबेडकरवादियों से हुई है।

गांधी जी और उनके समर्थक वर्णव्यवस्था को बरकरार रखने की पैरवी करते थे और अब भी करते हैं। वे मानते हैं और तर्क देते हैं कि वर्ण व्यवस्था क्योंकि वेदों, शास्त्रों की बनाई हुई है, इसलिए यह पवित्र है, और यह समाज के लिए अति उपयोगी भी है। वर्णव्यवस्था की सामाजिक उपयोगिता सिद्ध करने के लिए ये कल्पना लोक के अव्यावहारिक तर्क देते हैं, जैसे सभी वर्ण यदि अपने अपने धर्मों का पालन करें तो समाज समरसता पूर्वक सुचारू रूप से चलेगा। निरे भ्रामक कथनों के अलावा इसमें कोई सच्चाई नहीं है। मनुष्य अन्य पशुओं की तरह जन्मजात ज्ञान लेकर पैदा नहीं होता है। पशुओं को जन्म से ही चलने, बोलने तैरने आदि का सहज ज्ञान होता है परन्तु मनुष्य निर्बोध जन्म लेता है और सब कुछ परिवार व समाजव्यवस्था से ही सीखता है। समाजव्यवस्था अपने अनुरूप व्यक्ति के व्यक्तित्व व चरित्र, नैतिकता का निर्माण करने का प्रयास करती है। इसलिए जन्म से ही वर्णों में बांटना या तो मुर्खता है या यह षड़यंत्र है। मुर्ख या कपटी ही जन्म से वर्ण विभाजन करके यह दावा कर सकता है कि व्यक्ति जिस वर्ण में जन्म लेगा वह उस वर्ण के पेशे की योग्यता रखेगा। व्यक्ति की रूचि निश्चित नहीं होती है। न ही उसी चार भागों में बांटा जा सकता है। सभी जानते हैं कि व्यक्ति अपनी रूचि के अनुसार योग्यता हांसिल करने के प्रयास करता है। **यह समझना जरुरी है कि वर्णव्यवस्था सभ्य समाज में जातिप्रथा व जातियां रूपी ख़रपतवार का बीज है, जो वेद-शास्त्रों की प्रयोगशाला या धरती में पैदा हुआ है। बेहतर तो यह है, कि इस प्रयोगशाला को नष्ट कर दिया जाए या इस धरती को बांझ बना दिया जाए जहां से वर्ण व्यवस्था पैदा हुई है और लगातार ताकत, ऊर्जा और भोजन प्राप्त करती है।** यह किया जाना मुश्किल काम नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 13 में किसी भी प्रकार की गैरबराबरी को अमान्य घोषित किया है और स्पष्ट किया है कि संविधान प्रदत्त नागरिक अधिकारों के अनुरूप नहीं चलने वाली कोई भी परिपाटी, प्रथा, मान्यता, धारणा आदि संविधान का उलंघन मानी जाएगी। वर्तमान लोकतांत्रिक सभ्य समाज में संविधान की इसी धारा 13 के व्यवहारिक अनुपालन के लिए केवल एक प्रभावी कानून बनाने और उसे सही नीयत से लागू करने की जरूरत है। जिसमें वर्णव्यवस्था के कारण उपजे अधिकारों और कर्तव्यों का जहां-जहां भी समता, स्वतंत्रता, भाईचारे व न्याय के विरुद्ध अनुपालन हो रहा है, उन्हें रोक दिया जाए और इनकी जगह समतावादी नई व्यवस्था को लागू कर दिया जाए। इस मामले में सर्वाधिक प्रमुख पुजारी, पुरोहिताई, शंकराचार्य आदि का पेशा है, जिस पर वर्णव्यवस्था में पैदा हुए जन्मजात ब्राह्मण का ही केवल संपूर्ण प्रभुत्व व एकाधिकार है। इस व्यवसाय को सार्वजनिक किया जाए और इस पेशे की सार्वजनिक हितकारी प्राथमिक योग्यताएं निर्धारित की जाएं तो यह वर्ण व्यवस्था और जातियों के अंत का सार्थक कदम साबित होगा।

भारतीय संविधान अनुच्छेद 13 - मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियाँ

(1) इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियाँ उस मात्रा तक शून्य होंगी जिस तक वे इस भाग के उपबंधों से असंगत हैं।

(2) राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है और इस खंड के उल्लंघन में बनाई गई प्रत्येक विधि उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।

(3) इस अनुच्छेद में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,--

(क) "विधि" के अंतर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में विधि का बल रखने वाला कोई अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनियम, अधिसूचना, रूढ़ि या प्रथा है ;

(ख) "प्रवृत्त विधि" के अंतर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में किसी विधान-मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस संविधान के प्रारंभ से पहले पारित या बनाई गई विधि है जो पहले ही निरसित नहीं कर दी गई है, चाहे ऐसी कोई विधि या उसका कोई भाग उस समय पूर्णतया या विशिष्ट क्षेत्रों में प्रवर्तन में नहीं है।

[(4) इस अनुच्छेद की कोई बात अनुच्छेद 368 के अधीन किए गए इस संविधान के किसी संशोधन को लागू नहीं होगी।]

गांधीजी वर्णव्यवस्था को बचाकर छुआछूत मिटाने के लिए हृदय परिवर्तन की बात करते थे और रोटी-बेटी के संबंधों की वकालत करते थे। वर्तमान दौर में अंबेडकरवादी भी यही कह रहे हैं। वे केवल शब्द बदल देते हैं। वे हृदय परिवर्तन की जगह मानसिकता परिवर्तन शब्द का उपयोग करते हैं। मेरी समझ से दोनों शब्दों के व्यवहारिक प्रभाव में कोई अंतर नहीं है, और मानसिकता परिवर्तन का आंदोलन अंबेडकर वाद के नाम पर मूलतः गांधीवादी आंदोलन है। अंतर केवल इतना है कि गांधीजी उच्च वर्णों के हृदय परिवर्तन की बात करते थे और कथित अम्बेडकरवादी निम्न वर्ण की मानसिकता परिवर्तन पर जोर देते हैं।

बाबासाहब ने इस बात को स्पष्ट किया है कि व्यवस्था के अनुसार मानसिकता का निर्माण होता है। इसलिए, यदि मानसिकता में परिवर्तन करना है तो व्यवस्था में ही परिवर्तन करना होता है। इसलिए बाबासाहब ने वर्ण व्यवस्था को मिटाना अपना लक्ष्य बनाया था। लेकिन ब्राह्मण दुष्प्रचार तंत्र ने बाबासाहब के विचार को बड़ी चतुराई से ताक पर रखकर अपने विचार को बाबासाहब के विचार के नाम से प्रचारित कर दिया है।

वर्णव्यवस्था, जातिवाद व छुआछूत के निदान पर बाबासाहब की लिखी पुस्तक "जातिभेद का उच्छेद या जातिभेद का बीजनाश" से बेहतर पुस्तक कोई नहीं है। सामाजिक क्रांतिकारियों को यह पुस्तक बार-बार पढ़नी चाहिए और इसके कथनों पर गहराई से विचार करना चाहिए। एक ही समय पर कई बार पढ़ने से भी गलती हो सकती है। हमें इस पुस्तक का समय-समय पर, अंतराल के बाद अध्ययन करते रहना चाहिए। इस पुस्तक में बाबासाहब ने जातियों का संगठन बनाने के लिए मना किया है। यदि सामाजिक क्रांतिकारियों, आन्दोलनकारियों से इस

कथन की अनदेखी नहीं हुई होती और वे संघर्ष की रणनीति जातीय आधार को केंद्र बनाकर करने की बजाय मानवता व न्याय के आधार पर करते तो देश और बहुसंख्यकों की आज के जैसी भयाक्रांत हालत नहीं होती। जातीय संगठन ने शोषक जातियों को संगठित होने में मदद की, यह कड़वी सच्चाई है और यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि जातियों को तोड़े बिना जातियों को जोड़े नहीं रखा जा सकता है।

बाबासाहब ने इस छोटी सी पुस्तक में समाज की तात्कालिक स्थिति में चल रहे विभिन्न सामाजिक विचारों का विशद विवेचन किया है और इनमें व्याप्त अंतर्विरोधों को रेखांकित किया है। बाबासाहब की यह पूरी की पूरी पुस्तक ही अपने आप में एक उद्धरण है। बाबासाहब 11 वें अध्याय "'जाति प्रथा', असंगठन का कारण..." में, मारिस के शब्दों को कोट करते हैं,- *"हिंदू समाज एक ऐसा ग़दरबूद समाज है, जिसमें बड़े छोटों पर सवार, शक्तिशाली दुर्बलों का कचूमर निकालते, निर्दयी गुंडे निर्भय घूमते, दयालु व्यक्ति निरीह बने और बुद्धिमान व्यक्ति सब आर से उदासीन दिखाई देते हैं"* हम देखते हैं कि यही स्थिति आजादी के 73 साल बाद भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। बाबासाहब कहते हैं कि *"उदासीनता किसी भी समाज को लगनेवाला सबसे भयंकर रोग है"*, और प्रश्न खड़ा करते हैं कि *"हिंदू आखिर इतने उदासीन क्यों है?" वे स्वयं जवाब देते हैं कि "मेरे विचार से इसका एकमात्र कारण जातिप्रथा है जो इन्हें किसी अच्छे उद्देश्य के लिए भी संगठित और सहयोगी नहीं होने देती है"*

13वें अध्याय में बाबा साहब लिखते हैं कि *"हिंदुओं की जातिनिष्ठा ने, उनकी नैतिकता को भी नष्ट कर दिया है। जातिनिष्ठा ने लोक निष्ठा व सामाजिक उदारता की हत्या कर दी है। जाति निष्ठा ने लोकमत को असंभव बना रखा है,... करुणा व सहानुभूति यदि कहीं पाई भी जाती है तो उसका दायरा जाति तक सीमित रहता है।"*

14 वें अध्याय, आदर्श समाज के विषय में, वे कहते हैं कि *"मेरा आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता, भ्रातृता पर आधारित होगा... सामाजिक जीवन में अबाध संपर्क के अनेक साधन व अवसर उपलब्ध रहने चाहिएं... लोकतंत्र केवल शासन की एक प्रक्रिया ही नहीं है, यह मूलत सामूहिक जीवन चर्या की एक रीति तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान का नाम है। इसमें यह आवश्यक है कि अपने साथियों के प्रति श्रद्धा व सम्मान का भाव हो।"* इस कथन का मूल अर्थ तो यह है कि वर्णव्यवस्था व जातिप्रथा के रहते हुए न लोकतंत्र रह सकता है और न ही सामाजिक जीवन रह सकता है, क्योंकि नागरिकों में आपसी श्रद्धा व सम्मान लोकतंत्र व समाज का मूल है और वर्णव्यवस्था व जातिप्रथा इसे नकारती है। बाबासाहब लिखते हैं, *"चातुर्वर्ण अव्यावहारिक, हानिकारक तथा बुरी तरह असफल सिद्ध हुआ है, और व्यवहार में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ने अनेक कठिनाइयों को जन्म दिया है।"* गीता में श्रीकृष्ण गुण कर्मों के आधार पर चार वर्णों के निर्माण की घोषणा करते हैं। लेकिन इसपर बाबा साहब 16 वें अध्याय में कहते हैं, कि *"मनुष्यों के स्वभाव व गुणों में विभिन्नता रहने के कारण उनके गुणों के उपयोग की दृष्टि से वर्णों की घेराबंदी नितांत अनुपयोगी है। अत प्लेटो की रिपब्लिक की भांति ही चातुर्वर्ण की असफलता भी निश्चित है, क्योंकि तथाकथित वर्गीकरण के कारण ही मनुष्यों को कबूतरों की भांति भिन्न-भिन्न दरबों में कैद करना संभव नहीं है। प्रमाण में स्वयं चातुर्वर्ण का उदाहरण मौजूद है जिसमें सभी मनुष्यों की घेराबंदी संभव नहीं होने के कारण चार के स्थान पर 4000 दरबे अर्थात जातियां बन गईं।"* बाबासाहब का यह कथन इस बात को स्पष्ट रेखांकित करता है कि जातियों का कोई अन्य कारण नहीं है बल्कि केवल चातुर्वर्ण व्यवस्था ही है। लेकिन फिर भी ब्राह्मणों की पाठशालाओं में शिक्षित होकर गुमराह हुए फुले-अंबेडकरवादी सामाजिक

आंदोलनकारी, सामाजिक परिवर्तन के लिए मानसिकता परिवर्तन व रोटी बेटी के व्यवहार को विमर्श का केंद्र बनाते हैं और इसके असली कारण 'वर्ण व्यवस्था' का यदा-कदा ही नाम लेते हैं। अंबेडकरी आंदोलन का वर्तमान केंद्र बिंदु शोषित, पिछड़ी जातियों का सत्ता प्राप्ति के लिए समूहीकरण बना हुआ है। जो समाज की मौलिक आवश्यकता सामाजिक परिवर्तन अर्थात वर्णव्यवस्था व जातिभेद का बीजनाश के इर्द-गिर्द भी नहीं है। यह बहुत चिंताजनक है।

17 वें अध्याय में बाबासाहब कहते हैं, कि *"'चातुर्वर्ण', मनुष्य की सर्जनशील शक्तियों को कुंठित ही नहीं, मृतप्राय बना देती है"... "भारतीय इतिहास में केवल एक मौर्य काल ऐसा मिलता है जो महानता, स्वतंत्रता तथा वैभव का युग रहा है... मौर्य काल में चातुर्वर्ण का नामोनिशान भी नहीं रहा और शूद्र वर्ण, जो समाज का बहुसंख्यक वर्ग था, उन्नति के शिखर पर पहुंचकर देश का शासक बन सका था।"* इसी अध्याय में बाबा साहब कहते हैं कि *"यह प्रश्न मुझे हमेशा कचोटता रहा है कि "दुनिया के सभी देशों में क्रांतियां हुई है, लेकिन भारत में क्रांति नहीं हुई है। इसका क्या कारण है?"* बाबा साहब स्वयं कहते हैं कि *"इसका कारण यह है कि बहुसंख्यक शूद्रों को कभी भी शस्त्र धारण नहीं करने दिया गया और उन्हें शिक्षा से भी वंचित रखा गया।"* आज की लड़ाई शस्त्रों से लड़ी नहीं जाएगी, बल्कि बुद्धि बल से ही लड़ी जाएगी। क्या हमारी बुद्धि शिक्षा का वह स्वर प्राप्त कर सकेगी जो ब्राह्मणी कुतर्कों और झूठे पाखंडों का पर्दाफाश करते हुए समाज की वैज्ञानिक सूझबूझ और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त कर सके? बुद्धि का चरित्र और चाल साहित्य, प्रचार मीडिया आदि में परिलक्षित होता है। इस क्षेत्र में शुद्र-अतिशूद्र समाज को हाशिए पर रखने में सवर्ण समाज अब तक कामयाब रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में जो हालिया बदलाव किए गए हैं, उनको देखते हुए यह ही कह सकते हैं कि भविष्य में 'शूद्र' शिक्षा से वंचित ही रहेंगे। यदि परिस्थितियों को बदला नहीं गया तो शूद्रों का क्या हश्र होगा, यह कहना मुश्किल है?

18 वें अध्याय में बाबा साहब लिखते हैं कि *"आदर्श समाज की कसौटी यह होनी चाहिए कि विभिन्न वर्गों को जोड़ने की क्षमता रखने वाले तत्व कितने हैं और उनमें कितनी शक्ति है, तथा इन वर्गों को आपस में एक दूसरे से संपर्क रखने की स्वतंत्रता किस सीमा तक प्राप्त है। वर्गों को जोड़ने वाले तत्वों से, क्या इन्हें पृथक करने वाले तत्वों की संख्या अधिक है? इसी प्रकार यह तत्व भी महत्वपूर्ण है कि विभिन्न वर्गों या संगठनों का सामाजिक महत्व क्या है, अर्थात वर्गीकरण सुविधा एवं परंपरा की दृष्टि से ही किया गया है अथवा इसमें इसके साथ धार्मिक कट्टरता जुड़ी हुई है। हिंदुओं तथा इतर धर्मों की जाति प्रथा की जांच हमें इन्हीं कसौटी पर करनी चाहिए।"* इस कसौटी पर जांचते हुए बाबा साहब कहते हैं कि *"हिंदुओं में जात पात धार्मिक है। जबकि अहिंदुओं जैसे मुसलमान, सिख, इसाईयों में यह धार्मिक नहीं है। इसलिए जब हिंदू जाति बंधन तोड़ता है, तो इसका बहिष्कार निश्चित है। लेकिन अहिंदूओं को इससे कोई धार्मिक फर्क नहीं पड़ता है।"* वस्तुतः शूद्रों द्वारा शिक्षा ग्रहण करना और उच्च प्रशासनिक पदों पर सत्तारूढ़ होना हिंदू धर्म शास्त्रों के अनुसार धर्म की हानि है।

'हिंदू धर्मी अपने अस्तित्व पर गर्व करते हैं,' बाबा साहब 19 वें अध्याय में कहते हैं कि *"मुख्य बात यह नहीं है कि कोई समुदाय जीवित रहता है या नष्ट हो जाता है, वरन मूल प्रश्न यह है कि वह किन परिस्थितियों में जीवित है... किसी भी व्यक्ति या समाज के केवल 'जीने' और 'महत्व सहित जीने' में पर्याप्त अंतर है। संग्राम में शत्रु से लोहा लेकर यशस्वी बनकर जीना एक प्रकार का जीना है और युद्ध में पीठ दिखाकर,*

आत्मसमर्पण करके अथवा युद्ध बंदी के रूप में जीवन-यापन, जीवन का एक दूसरा प्रकार है। तर्कशील, यथार्थवादी समाज जानता है कि हिंदुओं का जीवन दूसरे प्रकार का जीवन है।"

उन धार्मिक मान्यताओं को तोड़े बिना, जिनपर कि जातिप्रथा टिकी हुई है, जातियों को तोड़ा नहीं जा सकता है।
-बाबासाहब अम्बेडकर-

20 वें अध्याय "जातिप्रथा का किला कैसे टूटे," में बाबासाहब लिखते हैं कि *"मेरा यह निश्चित मत है कि जब तक आप अपने समाज का ढांचा नहीं बदलते हैं, तब तक कोई उन्नति होना असंभव है। तब तक आप अपने समाज को ने आत्मरक्षा के लिए संगठित कर सकते हैं और न ही प्रहार के लिए जातियों की आधारशिला पर आप कोई निर्माण नहीं कर सकते, न तो राष्ट्र निर्माण ही कर सकते हैं और न नैतिकता ही बना सकते हैं। जातियों की आधारशिला पर यदि आपने कोई ढांचा खड़ा भी किया तो वह चटक जाएगा और टूटे बिना नहीं रह सकेगा। अत सर्वप्रमुख समस्या यही सामने आती है कि हिंदू सामाजिक व्यवस्था में सुधार कैसे लाया जाए और जाति प्रथा कैसे मिटे?"*

जातिप्रथा मिटाने के विषय में कुछ लोगों का मत है कि उप जातियों को समाप्त कर दिया जाए, कुछ का मत है कि अंतरजातीय भोज कराए जाएं। बाबासाहब इन्हें गलत धारणा ठहराते हैं और प्रश्न खड़ा करते हैं कि "क्या गारंटी है कि उप-जातियां के मिटने से जातियां भी मिटेंगी? इनके संदर्भ के साथ बाबासाहब कहते हैं कि *"मेरे विचार से जाति प्रथा का इलाज अंतरजातीय विवाह है। जब तक रक्त संबंध नहीं होगा, लोगों में आत्मीयता उत्पन्न नहीं होगी और जब तक आत्मीयता अर्थात परिजन होने का भाव नहीं उत्पन्न होगा, तब तक जातियों द्वारा उत्पन्न अलगाव का भाव समाप्त नहीं होगा।... आपने (जाती-पाती तोड़क मंडल) रोग की नस पकड़ ली है, और आपका यह दृष्टिकोण सही है कि जातीयता का रोग तभी समाप्त हो पाएगा जबकि अंतरजातीय भोज व विवाह सामान्य प्रचलन में आ जाएं।"* लेकिन बाबासाहब ने अपने विचार को यहीं विराम नहीं दिया। बाबासाहब इस उपाय अंतरजातीय विवाह का भी विश्लेषण करते हुए प्रश्न उठाते हैं कि *"परंतु, क्या कारण है कि अधिकांश हिंदू सम्मिलित भोज तथा विवाह पसंद नहीं करते हैं?... इसका एकमात्र उत्तर यही है कि सम्मिलित भोज तथा सम्मिलित विवाह उन सिद्धांतों और विश्वासों के विरुद्ध हैं जिन्हें हिंदू पवित्र समझते हैं।... जातियों की समाप्ति का अभिप्राय किसी भौतिक पदार्थ का अस्तित्व मिटाना नहीं है, वरन धारणा अर्थात भावात्मक परिवर्तन से है।... कुछ लोग यहां तक कहने के लिए तैयार हैं, कि जातिवाद ऐसे जहर को जन्म देता है जो मानवता के लिए घातक है... परंतु यह भी नहीं कहा जा सकता है कि हिंदू लोग जातियां इसलिए मानते हैं क्योंकि वह मानवता के शत्रु है, अथवा उनका दिमाग खराब है। वह तो इसे कट्टर धार्मिक होने के नाते मानते हैं। इस प्रकार जातिवाद मानने के लिए हिंदू नहीं उनका धर्म दोषी है, जिसने जातिवाद नामक जहर को जन्म दिया है। यदि यह बात सही है, तो आपको जातिवाद के अनुयायियों से नहीं उलझ कर हिंदू शास्त्रों का विरोध करना चाहिए क्योंकि यही उसे जातीयता धर्म की शिक्षा देते हैं।... सही उपाय तो यह है कि शास्त्रों की पवित्रता की भावना समाप्त कर दी जाए। लोगों के विश्वासों के विचारों को दूषित करते रहने के लिए यदि शास्त्र मौजूद रहे तो आप सफलता की आशा कैसे कर सकते हैं? शास्त्रों की मान्यता व उसके नियमों के प्रति श्रद्धा भाव के यथावत रहते यदि आप हिंदुओं की आलोचना करते हैं कि उनके विचार दकियानूसी तथा अमानवीय हैं, और उन्हें छोड़ने के लिए आंदोलन करते हैं, तो यह सरासर ज्यादती होगी।... अंतरजातीय विवाह का प्रचार व आंदोलन हिंदुओं के गले में जबरदस्ती कड़वी दवा उढ़ेलने जैसा है। परंतु यदि*

आप स्त्रियों व पुरुषों को शास्त्रों की गुलामी से मुक्ति दिला सके, उनके दिमाग से शास्त्रों का दूषित प्रभाव मिटा सके, तो आप देखेंगे कि लोग बिना आपके कहे ही अंतर्जातीय भोज व अंतरजातीय विवाह सहर्ष स्वीकार करेंगो" इससे स्पष्ट है कि बाबा साहब ने रोटी-बेटी को या रोटी-बेटी के आंदोलन को वर्णव्यवस्था अथवा जातिप्रथा में किसी के समाधान का उपाय नहीं स्वीकारा था, जबकि यह कहा था कि मानव मस्तिष्क को धर्म शास्त्रों की गुलामी से आजाद होना चाहिए या धर्म शास्त्रों की सत्ता समाप्त होनी चाहिए ताकि रोटी-बेटी सामान्य सामाजिक व्यवहार बन जाए। लेकिन ब्राह्मणवाद ने व्यवहारिक साधन, रोटी-बेटी व्यवहार को साध्य बनाकर पेश कर दिया और अम्बेडकर के विचार को पलट दिया। अतः प्रश्न यह खड़ा हुआ है कि धर्म शास्त्रों की सत्ता कैसे समाप्त हो? क्या यह संभव है?

बाबा साहब ने तात्कालिक कठिनाइयों पर विचार करते हुए कहा था कि यह संभव नहीं है। क्योंकि समाज का एकमात्र बुद्धिजीवी वर्ग 'ब्राह्मण' यह नहीं चाहता है कि वर्णव्यवस्था समाप्त हो। क्योंकि इससे उसके वर्ग हित जुड़े हुए हैं। आज का प्रश्न है कि क्या आज का प्रबुद्ध समाज यह अधूरा काम पूरा करने का बीड़ा उठा सकता है? क्या समाज इतना शिक्षित हो गया है कि वह वर्णव्यवस्था की बुराइयों को समझ कर इससे मुक्ति का आंदोलन चला सकता है? हमें स्वीकार करना चाहिए कि 1935 की स्थिति अब नहीं रही है। इससे पहले की नई शिक्षा नीति, शासन, प्रशासन, न्याय, सत्ता व अर्थ की नई नीतियां आम समाज को गुलाम बनाते हुए 1935 की स्थिति में ला खड़ा करें, समाज को एक बेहतर भारत के निर्माण के लिए वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने का लक्ष्य बना लेना चाहिए और जातिवाद, वर्णव्यवस्था को इसके बीज 'धर्मशास्त्रों' सहित नष्ट कर देना चाहिए।

हमें धर्म शास्त्रों में क्या नष्ट करना है। इसके बारे में बाबा साहब कुछ स्पष्टीकरण देते हैं। 23 वें अध्याय, 'धर्म शास्त्रों में संशोधन की जरूरत' में वे कहते हैं कि *"वे सिद्धांतों व नियमों में भेद मानते हैं। नियम व्यवहारिक होते हैं जो कुछ निश्चित आदर्शों के अनुरूप मनुष्य के अभ्यस्त आचरण को दर्शाते हैं, जबकि सिद्धांतों का रूप बौद्धिक होता है और मनुष्य के कार्यों के निर्णय का उपयोगी आधार प्रस्तुत करता है। 'नियम' मनुष्य को यह कहते हैं कि किस विधि से कार्य संपादित किया जाए। सिद्धांत कोई कार्यविधि निर्धारित नहीं करते।"* हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि हमारा संविधान समता, स्वतंत्रता, बंधुता व न्याय आदि को सिद्धांत के रूप में स्वीकार करता है। इसके आधार पर संविधान में मोटे तौर पर कुछ अन्य सिद्धांतों और नियमों के को रखा गया है, और उनके व्यावहारिक निष्पादन के लिए समय-समय पर कानून व नियम बनाए और बदले जाते रहते हैं। जो कानून या बदलाव संविधान के अनुरूप नहीं होते हैं उनके लिए कहा जाता है कि वे संविधान का उल्लंघन है। साधन-संसाधनों का निजीकरण, विभेदी शिक्षा नीति, जीएसटी व अप्रत्यक्ष कर प्रणाली, सीमाहीन संपत्ति का अधिकार, सी.ए.ए., ई.वी.एम. आदि नियम, कानून, व्यवहार संविधान की मूल भावना व चरित्र के विरुद्ध हैं, जिन्हें सत्ता ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपनाया है। जैसे समाज इनमें बदलाव व सुधार की इच्छा रखता है, वैसे ही समाज को धार्मिक मामलों व धर्म में सुधार व बदलाव के लिए उद्धत रहना चाहिए। संविधान का अनुच्छेद 13 इसका महत्त्व, आदर्श व आवश्यकता दर्शाता है।

वर्णव्यवस्था, जातिवाद, भेदभाव आदि की समस्या के समाधान के लिए हिंदू धर्म को समाप्त करने के अपने कथन के संबंध में बाबासाहब स्पष्ट करते हैं कि *"हिन्दूओं का धर्म बस आदेशों व निषेधों की संहिता के रूप में मिलता है, और वास्तविक धर्म, जिसमें आध्यात्मिक सिद्धांतों का विवेचन हो, वास्तव में सर्वजनीन और विश्व के सभी समुदायों के लिए हर काम में उपयोगी हो, हिंदुओं में पाया कि नहीं जाता है, और यदि कुछ थोड़े से सिद्धांत पाए भी जाते हैं तो हिंदुओं के जीवन में उनकी कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं पाई जाती है। हिंदुओं का धर्म आदेशों और निषेधों का ही धर्म है। यह बात वेद व स्मृतियों में धर्म शब्द के प्रयोग तथा व्याख्या कारों द्वारा उसकी व्याख्या से स्पष्ट है... इसमें (हिंदू नियमों में) पहली बुराई को यही है कि इसमें मनुष्य के नैतिक जीवन की स्वतंत्रता तथा तर्क वितर्क व विवेक का हनन हो जाता है। वह ऊपर से थोपे हुए नियमों का दास बन कर रह जाता है। इसमें आदर्शों के प्रति कोई निष्ठा नहीं पाई जाती है और सिर्फ आदेशों के नियमों का पालना ही महत्व रखता है। इसके अलावा इसका सबसे बड़ा दोष तो यह है कि इसके जो नियम कब लागू थे, वही आज ही लागू है, और भविष्य में भी हमेशा वही नियम लागू रहेंगे। साथ की यह नियम सभी वर्गों के लिए समान नहीं होने के कारण अन्यायपूर्ण भी है। और चूंकि यह हमेशा के लिए बन गए हैं, इसलिए यह अन्याय भी हमेशा के लिए शाश्वत, स्थाई बन गया है... विभिन्न युगों, विभिन्न परिस्थितियों, विभिन्न दशाओं के अंतर्गत विभिन्न लोगों की प्रसन्नता के कारण व आधार विभिन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में बिना संशोधन व काट छांट के किन्हीं चिरंतन नियमों को मानवता कैसे सहन कर सकती है? इसलिए डंके की चोट पर मैं कह सकता हूं कि ऐसे धर्म को निर्मूल करना अनिवार्य है, और इस कार्य में कोई अधर्म नहीं है। तथा मैं अनुभव करता हूं कि आपका यह अनिवार्य कर्तव्य है कि ऐसे लचर नियमों को धर्म का नाम देने से जो अज्ञान की घटाएं छाई हुई हैं, उन्हें दूर करें... जब तक लोग शास्त्रीय आज्ञाओं को धर्म मानते रहेंगे, वे इनमें किसी परिवर्तन के लिए राजी नहीं होंगे। लेकिन ज्योंही वे यह समझ लेंगे कि उनका धर्म, 'धर्म' नहीं कानूनों का पुराना और आदिम कालीन संग्रह है, वे सहर्ष परिवर्तन के लिए तैयार हो जाएंगे।"* इन मुख्य बिंदुओं को समाहित करते हुए बाबासाहब 23 वें अध्याय को पूर्ण करते हैं और वर्णव्यवस्था व जातिवाद की समस्या के समाधान के अंतिम पड़ाव 'धर्म और पुरोहितों का नया रूप कैसा हो।' इस पर अपनी चर्चा आरंभ करते हैं।

अनेक विद्वान लोग प्रचलित धर्मों को नकारते हुए स्वयं को नास्तिक कहलाना पसंद करते हैं। धर्म को अफीम तक कह देते हैं। लेकिन बाबासाहब धर्म के महत्व व आवश्यकता को स्वीकारते हैं। वे कहते हैं कि *"मैं विचारक 'बर्क' के इस कथन से पूरी तरह सहमत हूं कि 'सच्चा धर्म समाज की नींव होता है जिस पर सभी सभ्य सरकारें टिकी होती है और शक्तियां प्राप्त करती है।' अत जब मैं इन पुरातन नियमों को रद्द करने की वकालत करता हूं तो यह भी चाहता हूं कि सिद्धांतों पर आधारित ऐसा धर्म हो जिसे वास्तव में सच्चे धर्म की संज्ञा दी जा सके"... "मेरे विचार से संशोधन की मुख्य बातें निम्न होनी चाहिएं:-*
(1) हिंदुओं का केवल एक प्रामाणिक ग्रंथ होना चाहिए जो सभी हिंदुओं द्वारा मान्य एवं स्वीकार्य हो। साथ ही यह भी आवश्यक है कि वेद, शास्त्र, पुराण आदि ग्रंथ, जिन्हें अब तक पवित्र और प्रामाणिक माना जाता रहा है, कानून के द्वारा उनकी यह मान्यता समाप्त कर दी जाए और इनके सिद्धांतों, नियमों या आदेशों का प्रचार करना दंडनीय अपराध माना जाए" (सभी भारतीय व हिंदू भी संविधान को अपना जीवन आदर्श स्वीकार कर लें और असंगत विचारों व व्यवहारों को अपने जीवन से निकाल ले, अन्यथा दंड का विधान हो। इससे जातिप्रथा अवश्य मिटेगी - इंसाफ-)

(2) यह बेहतर होगा कि हिंदुओं के पुरोहित पेशे यानी पुरोहिताई को समाप्त ही कर दिया जाए। लेकिन यह असंभव लगता है। इसलिए पुरोहिताई में कम से कम वंश परंपरा को जरूर बंद कर देना चाहिए, और हरेक हिंदू को पुरोहित बनने का अवसर होना चाहिए। यह कानूनी व्यवस्था होनी चाहिए कि वही व्यक्ति पुरोहिताई कर सकें जिसने सरकार द्वारा निर्धारित परीक्षा पास कर ली हो तथा सरकार से प्रमाण पत्र या लाइसेंस प्राप्त कर लिया हो।
(3) गैर सनद या प्रमाण पत्र याफ्ता पुरोहितों द्वारा कराए गए कर्मकांड, रिवाज, संस्कार, अनुष्ठान कानून की दृष्टि से अमान्य होने चाहिए और बिना लाइसेंस पुरोहिताई करना अपराध माना जाना चाहिए।
(4) पुरोहित राज्य का नौकर होना चाहिए और देश के सामान्य नागरिक की तरह देश के सभी कानूनों के साथ-साथ सेवकों की तरह आचरण, व्यवहार एवं उपासना के संबंध में उन पर राज्य द्वारा निर्धारित अनुशासन लागू होना चाहिए।
(5) आई.सी.एस. अधिकारियों की तरह, पुरोहितों की संख्या आवश्यकतानुसार राज्य द्वारा निर्धारित होनी चाहिए।... डॉक्टरों, इंजीनियरों, वकीलों को अपना पेशा शुरू करने से पहले दक्षता और लाइसेंस की जरूरत होती है।... पुरोहित वर्ग को मेरे द्वारा सुझाई गई रीति से कानून बनाकर नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। ऐसा हो जाने पर यह वर्ग जनता को गुमराह करके उसका अहित नहीं कर सकेगा। कानून इस पेशे के द्वार सबके लिए खोल कर इसे लोकतांत्रिक रूप प्रदान कर देगा। ऐसे कानून से निश्चय ही ब्राह्मण शाही समाप्त हो जाएगी। इससे जातिवाद, जो ब्राह्मणवाद की ही उपज है, इसे समाप्त करने में भी मदद मिलेगी। ब्राह्मणवाद के ज़हर में हिंदू समाज को अपाहिज बना दिया है, इसलिए ब्राह्मणवाद को समाप्त करके आप हिंदू धर्म को पुनर्जीवन प्रदान कर सकेंगे। इस सुझाव से हिंदुओं के अपने सिद्धांत गुण कर्म की भी प्रतिष्ठा होगी।"

उपरोक्त सभी कथन व उद्धरण बाबा साहब की 'जातिभेद का बीजनाश' नामक पुस्तक से लिए गए हैं। यह आज भी उतने ही सजीव व आवश्यक है जितना कि 1935-36 में थे, जब इन्हें प्रचारित किया गया था। मुझे आश्चर्य है कि स्पष्ट निर्देश होते हुए भी इसे अब तक क्यों नहीं अपनाया गया है? इस पर क्यों कोई आंदोलन नहीं चलाया गया है? बाबासाहब के सुझाव, सिद्धांत और व्यवहार, दोनों दृष्टियों से परिपूर्ण है। तो भी इन्हें नजर अंदाज किया गया है। इनकी बजाय व्यक्ति की मानसिकता परिवर्तन व रोटी बेटी के व्यवहार को जातिवाद, ब्राह्मणवाद का उपाय बताया गया है, जो मेरी समझ से फिर कहूँगा कि गांधीवादी विचारधारा है। व्यक्ति के हृदय परिवर्तन या व्यक्ति की मानसिकता परिवर्तन के अर्थों में कोई व्यवहारिक अंतर दिखाई नहीं पड़ता है। और रोटी बेटी के संबंधों के मामले में गांधीजी के विचार सर्वविदित है। 'जातिभेद का बीजनाश' के परिपेक्ष में स्पष्ट है कि समाज ने वर्षों से अनजाने-अनचाहे अंबेडकर वाद के नाम पर गांधीवाद या ब्राह्मणवाद की ही पैरवी की है। बाबासाहब का स्पष्ट मत रहा है कि व्यवस्था से ही सामान्यतः व्यक्ति के व्यक्तित्व व मानसिकता का निर्माण होता है। लेकिन जब कोई महामानव व्यवस्था के तय आदर्शों से अलग या ऊंचे उठकर उन्हें चुनौतियां देता है, तो समाज में हलचल पैदा होती है, और समाज का सामान्य व्यक्ति वर्षों से चली आ रही व्यवस्था या व्यवस्था को चुनौती देने वाले महामानव के प्रस्तुत किए आदर्शों व सिद्धांतों में से किसी एक को चुनता है। यदि महामानव द्वारा प्रस्तुत आदर्श समाज द्वारा स्वीकार कर लिए जाते हैं तो व्यवस्था परिवर्तन हो जाता है। और यदि नहीं स्वीकारें जाते हैं तो भी व्यवस्था के आदर्श व व्यवहार ज्यों के त्यों नहीं रहे पाते हैं, बल्कि वह आन्दोलन के प्रभाव की हद तक ढीले हो जाते हैं। बेशक बाबासाहब के प्रस्तुत सुझावों व

अन्य आदर्शों को व्यवस्था ने अपने व्यवहार का आदर्श नहीं बनाया है, तो भी इनके प्रचार प्रसार से पैदा हुई सामाजिक चेतना से व्यवस्था में इसके पुराने आदर्शों का व्यवहार ढीला हुआ है। जितना ढीला हुआ है, वह ही सामाजिक परिवर्तन है।

व्यक्ति स्वयं का धर्म परिवर्तन के लिए स्वतंत्र है, लेकिन समाज के धर्म परिवर्तन के लिए व्यवस्था के चाल, चरित्र और व्यवहार में परिवर्तन करना होता है, जैसा कि बाबासाहब ने स्पष्ट किया है। गांधीवाद, ब्राह्मणवाद अब तक स्वयं को अंबेडकर वाद के नाम पर गतिशील बनाए रखने में कामयाब रहा है। वक्त का तकाज़ा है कि समाज के बुद्धिजीवी लोग मानसिकता या हृदय परिवर्तन द्वारा सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन तथा सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन द्वारा मानसिकता परिवर्तन की प्रक्रिया पर विचार करें और समाज को दिशा दें। जब तक सामाजिक व्यवस्था के आदर्शों, सिद्धांतों व व्यवहार को सीधी चुनौती नहीं दी जाती है, तब तक न तो व्यवस्था में और न ही लोगों की मानसिकता में ही कोई क्रांतिकारी परिवर्तन आ पाता है। जब तक एक को समझाते हैं तब तक लाखों नासमझ बच्चे पैदा हो जाते हैं जो व्यवस्था की ही समझ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार परंपरागत सामाजिक व्यवस्था यथावत आगे बढ़ती है और सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन की मरीचिका भी आगे-दूर बढ़ती रहती है। यह ही मौज़ूदा दौर के सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन की दशा है। बाबासाहब के भक्तों को अपनी बुद्धि व विवेक का इस्तेमाल करना चाहिए। हृदय परिवर्तन या मानसिकता परिवर्तन तथा रोटी बेटी का व्यवहार तो गांधीजी के उपाय थे। यदि यही उपाय बाबासाहब के थे तो उनका गांधी से क्या झगड़ा या विरोध था? आज हमें बाबासाहब के सुझावों तक सीमित रहना जरूरी नहीं है। समाज को इनसे आगे बढ़कर व्यापक प्रावधानों का निर्माण करके वर्णव्यवस्था व इसके दुष्परिणामों, ब्राह्मणवाद, जातिवाद, जातिप्रथा आदि को समाप्त करने का प्रण लेना चाहिए। वर्णव्यवस्था सामाजिक अपराध है, इसे दण्ड विधान से ख़त्म किया जाना चाहिए।

जातिपाती तोड़क मंडल के राष्ट्रीय अधिवेशन के लिए तैयार किए गए वक्तव्य में बाबासाहब का यह ही निष्कर्ष था। इसे व्यवहार में लाकर समाज का मानवीय आधार पर पुनर्गठन एक सामाजिक चुनौती है जिसे स्वीकार करके अमली जामा पहनाना भारतीय समाज की मौलिक जरुरत है।

-अमृतलाल सरजीत सिंह,
राष्ट्रीय अध्यक्ष, इंसाफ

(सामाजिक न्याय के लिए इंसाफ, मूकवक्ता व बामसेफ का सदस्य एवं कार्यकर्ता बनें।)

निवेदक
राष्ट्रीय कार्यकारिणी इंसाफ,
अमृतलाल सरजीत सिंह:7226820310, मुकेश किसन मेश्राम:9420114359, चुन्नीलाल:9871775673,
एलबी राम:9412000033, आर के सेमस्कर:9860954048, पृथ्वी सिंह:9416275644,
सुभाष कुमार:9818836759, सीबी राहुल:9818952735, हरि सिंह:8527420752,
सीडी गेडाम:7888032562, चरणसिंह सुमन:9868838696, मोली राम:9821457006,
गुरुप्रसाद पाल:9935871460, शारदा रानी कैन:9354619620

"जातिव्यवस्था का शास्त्रों में समाधान खोजना वैसा ही है जैसे कीचड़ से कीचड़ को धोना।" संतराम बी.ए.

"जो लोग वर्णव्यवस्था को कायम रखते हुए अछूतपन को दूर करने का यत्न करते हैं वे ज्वर के रोगी का हाथ बर्फ में रखकर उसका ज्वर शांत करने का उपाय करते हैं।" संतराम बी.ए.

– इंसाफ की ज्वलंत मांगें –

वर्णव्यवस्था अपराध है, दण्ड विधान से ख़त्म करो।
समान संपत्ति नागरिक मूल अधिकार बनाओ।
नागरिक की संपत्ति के हिस्से पर ब्याज का भुगतान करो।
एफ.पी.टी.पी. हटाओ, एम.एम.पी.आर.एस. अपनाओ।
जी.एस.टी. हटाओ, आयकर घटाओ, आधिक्य संपत्ति टैक्स लगाओ।

Regd No. S-69454

इंसाफ

सामाजिक न्याय मिशन

प्रख्यात राष्ट्रवादी सामाजिक सक्रियता मंच

Illustrious Nationalist Social Activism Forum (INSAF)

पंजीकृत कार्यालयः आई-190, अशोक विहार फेस-1, दिल्ली-110052

पत्राचार कार्यालयः एफ-11, दिपाली अपार्टमेंट, रामप्रस्थ, गाज़ियाबाद, उ.प्र.-201011;

e-mail: insafforall1@gmail.com; insaf.nationalwp@gmail.com;

संपर्क: 7226820310, 9420114359, 9818836759, 9871775673, 9818952735